स्वामी मुक्तानन्द की दिव्य दीक्षा

अपनी आध्यात्मिक आत्मकथा, चित्शक्ति विलास के दसवें प्रकरण में, बाबा मुक्तानन्द उस प्रातः का वर्णन करते हैं जब उनके श्रीगुरु, भगवान नित्यानन्द ने उन्हें दिव्य शक्तिपात दीक्षा प्रदान की थी। उस प्रातः का वृत्तान्त बताते हुए बाबा जी उसका गुणगान करते हैं कि यह वह निर्णायक घटना थी जिसने उनकी साधना को वेग प्रदान किया और उन्हें अपने जीवन की खोज की परिणति तक पहुँचाया, वह खोज थी, परम आत्मा के साथ एकाकार होना।

***

चित्शक्ति विलास, प्रकरण १०

१५ अगस्त, १९४७—क्या जाने वह कौन शुभ दिन था! कितना अमृत भरा था! कितना दिव्य! कौन पुण्य और किस महाभाग्य को लिए हुए था! हमारे जीवन का सुदिन! आयुष्य का मंगलमय दिन! बहुत काल में, बहुत जन्म में वही एक दिन था। वह परमपुनीत, हाँ, वह 'मंगलानां च मंगलम्' दिन उदित हो गया।

सूर्य उदय होकर किंचित् ऊपर आया था। वातावरण शान्त था। पूर्व कोने में मैं खड़ा था। अन्दर ध्यान-कक्ष में श्रीगुरुदेव अपने स्व-स्वरूप ध्यान से उठने की पूर्वतैयारी-सूचक हुँकार करते थे। थोड़ी देर में गुरुदेव बाहर आ गए। आज तो कुछ नया ही रूप था। कभी भी ऐसा रूप नहीं देखा था।

मैंने देखा कि वे एक सुन्दर पादुकाओं की जोड़ी पाँव में डाल रहे हैं। वे आगे-पीछे जाते। मुस्कराते। एक बार उस कोने में जाते और कुछ न कुछ गुह्य मन्त्रों को गाते। मेरे सामने आकर फिर मुस्कराते। गाना गाते। वे एक सफ़ेद शॉल ओढ़े हुए थे। नीचे सिर्फ़ एक लँगोटी और पाँव में पादुकाएँ थीं। वे बार-बार मेरे सामने खड़े होकर ज़ोर-से 'हूँ' शब्द करते। ऐसे ही एक घण्टा बीत गया।

तदनन्तर गुरुदेव पास आ गए। उन्होंने मेरे अंगों से अपने अंग सटा लिए। मेरा शरीर एक नए आश्चर्य को पाकर स्तब्ध हो गया। सामने पश्चिम की ओर मुख करके मैं खड़ा था। मेरे शरीर से लगकर पूर्व की ओर मुख करके गुरुदेव खड़े थे। मैं नेत्र खोलकर देखने लगा। देखा कि गुरुदेव के शाम्भवी मुद्रा में पूरे खुले हुए नेत्र मेरे नेत्रों में एकाकार हो गए थे। मेरा शरीर शून्य हो गया। आँखें बन्द नहीं कर सका, क्योंकि

उनको खोलने या मीचने की स्वतन्त्र शक्ति मुझमें नहीं थी। गुरुदेव की आँखों के दिव्य तेज से मेरी आँखें पूर्ण स्थिर हो गईं। ऐसा थोड़े काल तक रहा।

फिर 'हूँ' रूप में गुरुदेव का दिव्यनाद सुना। गुरुदेव दो फुट पीछे हट गए थे। मैं थोड़ा होश में आया। "ये लो, तुम ये खड़ाऊँ डालो," उन्होंने ऐसा कहकर पूछा, "मेरे ये खड़ाऊँ डालेगा?" मैंने आश्चर्य, आदर और धैर्य से कह दिया, "गुरुदेव! ये खड़ाऊँ मेरे पाँव में डालने के लिए नहीं। बाबा जी! ये तो मेरे जीवन में पूजने योग्य हैं। यदि आप कृपा करें तो आँचल पसारता हूँ, आप उन्हें अपने ही पाद से उसमें रख दीजिए।"

पूज्य गुरुदेव ने बात मान ली। 'हूँ' 'हूँ' ध्वनि करके प्रथम अपना बाँया पाँव खड़ाऊँ-सहित ऊपर उठाया और मेरे फैले हुए दामन में खड़ाऊँ रख दी। तदनन्तर प्रथम पाँव नीचे रखकर, दूसरा दाहिना पाँव उठाकर दूसरी खड़ाऊँ रख दी। वे सीधे मेरे सामने खड़े हो गए। मेरी आँखों में पुनः एक बार दृष्टिपात किया। मैंने बड़ी सावधानी से देखा। उनकी आँखों के मध्यबिन्दु से ज्योति-किरण मेरे अन्दर प्रवेश कर रही थी। वह किरण उष्ण तेजयुक्त दहकते ताप की तरह मुझे स्पर्श कर रही थी। उसका प्रकाश किसी बड़े 'बल्ब' के प्रकाश की तरह आँखें चकाचौंध कर देने वाला था। जब भगवान नित्यानन्द के चक्षु के मध्यबिन्दु से ज्योति-किरण बाहर प्रसरित होकर मेरी आँखों में प्रविष्ट हो रही थी तब मैं आश्चर्य, विस्मय, आनन्द और भय से रोमांचित हो उठा।

उस किरण के रंग को देखता हुआ, भगवान के दिए हुए मन्त्र 'गुरु ॐ' को मैं जप रहा था। किरण अखण्ड थी। उसमें दिव्य चमक थी। कभी उसका रंग अग्नि से तप्त स्वर्णकान्ति जैसा था, कभी केसर जैसा, तो कभी चमकते हुए नक्षत्र से ज़्यादा तेजयुक्त गहरे नीले रंग का था। उन तेजोमय किरणों को अपने अन्दर प्रवेश होते हुए देखकर मैं स्तब्ध, स्थिर हो गया। शरीर पूरा जड़ हो गया। तदनन्तर श्रीगुरुदेव थोड़ा-सा हिले और उन्होंने पुनः हुँकार घोष किया। तब मेरी जड़ता थोड़ी चली गई और मैं होश में आया। मैंने दामन में लिपटी हुई उन पादुकाओं पर सिर नवाया। तदनन्तर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करके परमानन्द से उल्लसित होकर उठा।

गुरुदेव हॉल के पश्चिम में गए। थोड़े फूल लाए, साथ-साथ दो केले, दो-तीन अगरबत्ती और कुमकुम की एक पुड़िया भी। उन्होंने उनको पादुकाओं पर डाल दिया। मैं 'ॐ ॐ गुरु ॐ' रटने लगा।

श्रीगुरुदेव ने बोलना शुरू किया, "सब मन्त्र एक। सब ॐ। 'ॐ नमः शिवाय ॐ' 'शिवोऽहम्' होना चाहिए। 'शिव, शिव'-'शिवोऽहम्' होना चाहिए। अन्तरंग में होना चाहिए। बहिरंग से अन्तरंग श्रेष्ठ रे!" बाबा जी 'हूँ' कहकर अन्दर गए।

भगवान अन्दर से बाहर आए। हाथ में एक नीले रंग की शॉल थी। उसे उन्होंने मेरे अंगों पर डाल दिया। तदनन्तर बड़े वेग से रसोई घर की ओर गए जहाँ कच्चे केले के भजिए बन रहे थे। उनमें से भगवान ने दोनों हाथ भरकर भजिए लाकर उसी झोली में डाल दिए जिसमें गुरु-पादुकाएँ थीं। अन्त में उन्होंने अपनी आनन्दमय मुखमुद्रा से 'हूँ' कहकर जाने का इशारा कर दिया।

बाहर आकर मैं पादुकाओं को सिर से बार-बार लगाए रहता। भजिए एक-एक करके खाता। फूलों को सूँघता रहता। शॉल की चिकनाई, सुन्दरता, महानता देखते-देखते हर्षित हो जाता। मैं अपने भाग्य को धन्यवाद देते-देते, परशिव की अहोकृपा की प्रशंसा करते-करते, धीमे-धीमे अपने स्थान की ओर जाने लगा। जाते-जाते गुरुभाव और गुरुभक्ति पुनः उदित होने लगी। भावना के वेग से गुरुभाव बढ़ता चला।

सिर पर श्रीगुरुदेव की पादुकाएँ थीं। रास्ते में गाँधीपाड़े से आगे जाते हुए, जहाँ छोटा-सा पुल यानी नाली आती है, जहाँ से वर्तमान 'श्री गुरुदेव आश्रम' की सीमा शुरू होती है, जहाँ उस छोटे-से पुल से लगकर एक औदुम्बर का वृक्ष है, वहाँ पहुँचते ही दिव्य गुरुभाव ब्रह्मभाव में बदल गया। अन्दर-बाहर के जगत में भिन्न-भिन्न भेद करके 'एक में अनेक' दिखाने वाली भेदवृत्ति को छोड़कर क्षण भर के लिए 'अनेक में एक' भाव की अनुभूति हुई। 'गुरु ॐ' 'गुरु ॐ' जपते-जपते, 'अन्दर गुरु, बाहर गुरु' कहते-कहते, वेदान्त का ब्रह्मसिद्धान्त जो पहले अलग-अलग आचार्यों से पढ़ा था, फिर स्फुरने लगा।

किंचित् वरुण देव की भी कृपा हुई। मन्द-मन्द वर्षा की महीन बूँदें हलके-से पड़ने लगीं। शीतल वायु शान्ति से बहने लगी। मैं अपने नेत्र मूँदता और खोलता जाता था। अन्दर से एक अनन्त ज्योतियों का किरणपुंज जगमग-जगमग करने लगा और न जाने कितनी कोटि संख्या में स्फुरने वाली छोटी-छोटी चिनगारियाँ लकलकाती हुई मेरी बन्द आँखों को दिखने लगीं। मैं देखता ही रहा। क्या सुन्दर दृश्य था! अति सूक्ष्म चिनगारियाँ झिलमिल-झिलमिल करती हुई चमक रही थीं। वे मेरे अन्दर सर्वांग में दिखती थीं। उनकी गति विस्मयजनक थी। उनके ऐसे वेग और संख्या को देखते-देखते मैं आनन्द और आश्चर्य से पूरित हुआ और आँखें खोलकर बाहर देखने लगा। बाहर भी वही अनन्त स्फुलिंगयुक्त चमचम करती चमकीली, अणु से भी अणु, नीली चिनगारियों की लकलकाती हुई बहुत-सी पंक्तियाँ देखीं।

देखते-देखते बड़ा मस्त, भावयुक्त और आश्चर्यान्वित हो गया। एक नया अनोखा दृश्य चित्रपट में नहीं, बल्कि अपने चारों ओर देख रहा था। मैं धीमी-धीमी गति से चल रहा था। मुझे पता नहीं था कि मैं रास्ते पर चल रहा हूँ या रास्ता मेरे पीछे-पीछे आ रहा है। गाँवदेवी मन्दिर के समीप पहुँचकर रुका। गणेशपुरी की ओर मुख सहज ही फिर गया। याद आई प्यारे गुरुदेव की। पुनः मन ही मन नमस्कार किया। रास्ते के किनारे-किनारे आगे बढ़ा।

वरुण की कृपारूप छोटी-छोटी बूँदें अभी भी बरस रही थीं। वह मन्द वर्षा की कोमल फुहार नील रंग की छोटी चमचम करती हुई किरणों से मिलकर अद्‌भुत लग रही थी। मैं हृदय में सर्वात्मभावरूप श्रीगुरुस्मरण करता हुआ, सिर पर श्रीगुरुचरणपादुकाएँ लिए हुए धीरे-धीरे चल रहा था। अब भी मुझको उस एकाकार अनुभूति की पूर्ण स्मृति है। वे छोटे-छोटे नीलबिन्दु अब भी दीख रहे हैं।

चलते-चलते वज्रेश्वरी मन्दिर जा पहुँचा। मन्दिर के पीछे एक छोटा दत्त मन्दिर है। मैं हमेशा वहाँ रहा करता था। उस दत्त मन्दिर में मैं गुरुपादुकाओं की पूजा और थोड़ा ध्यान करने लगा।

कितनी महिमा की बात थी!

कितना महान सुमंगल दिन, पुण्य समय था वह!
मेरा ताप मिटा, पाप कटा, जन्म-मरण घटा। अविद्या का परदा हटा।

इस प्रकार उन्होंने मुझे दिव्य दीक्षा दी।

स्वामी मुक्तानन्द द्वारा लिखित, *चित्‌शक्ति विलास : एक आध्यात्मिक आत्मकथा,* प्रकरण १० "दिव्य दीक्षा" से उद्धरित व रूपान्तरित अंश, [चित्‌शक्ति पब्लिकेशन्स, २०१७], पृ ६७-७४।

डिज़ाइन प्रारूप रचना : मेज़ी मॅक्‌क्रैडी

© २०००, २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

कृपया कॉपी, पोस्ट, या वितरित न करें।